कहानी

बाप की मेहनत

एक बाप अपने बेटे को रोज स्कूल छोड़ने जाता था और बेटा अक्सर कहता था पापा,आप मेरे साथ अंदर क्यों नहीं आते ? बाप मुस्कुराकर कहता, बेटा तुम एक दिन बहुत बड़ा आदमी बनेगा कि मैं तुझे दुर से देखकर ही खुश हो जाऊंगा। बेटा बड़ा होता गया और बाप की मेहनत छोटी लगने लगी। एक दिन बेटे ने कहा, पापा आपने मेरे लिये किया ही क्या। बाप कुछ नहीं बोला और बस अपने पुराने जूतों को देखता ही रहा। उन जूतों ने न जाने कितनी रातें जागकर अपने बेटे के सपनों को पुरा किया था। बेटा जब समझने लायक हुआ तब तक बहुत देर हो चुकी थी। एक दिन बाप फोन लगाकर सिर्फ इतना बोला,बेटा मुझे तेरे पैसे नहीं चाहिये थे। बस तेरे दिल में अपनी थोड़ी सी जगह चाहिये थी। इतना सुनकर बेटे ने बिना कुछ बोले फोन कट कर दिया।

प्रेमनारायण वेद
इंदौर

मंथन

जिंदगी की आपाधापी में वक्त सरपट भागा जा रहा था। शिवानी खिड़की के पास बैठी, शीशे में अपना चेहरा निहारते हुए न जाने कब अपने ही भीतर उतर गई। मन में सवालों का सिलसिला चल पड़ामैंने कहाँ कभी किसी का बुरा चाहा? कहाँ कभी किसी के लिए गलत सोचा? फिर कुछ लोगों ने मेरे साथ बुरा व्यवहार क्यों किया? वह जिन लोगों के लिए हमेशा अच्छा सोचती थी, उन्हीं में से कुछ ने कभी उसे ऐसी बातें कहीं, ऐसा व्यवहार किया, जिसे वह चाहकर भी भूल नहीं पाई थी। फिर भी शिवानी ने उनके लिए कभी बुरा नहीं सोचा। न मन में बदले की भावना रखी, न उनके लिए कोई गलत कामना की। बस एक बात उसे भीतर तक कचोटती थी जब मैं सबका अच्छा करती हूँ, सबके लिए अच्छा सोचती हूँ, तो मेरे साथ ही ऐसा क्यों? कभी-कभी वह सोचती, शायद उसने लोगों से कुछ ज्यादा ही उम्मीद कर ली थी। फिर खुद ही अपने मन को समझाती अच्छाई का अर्थ यह तो नहीं कि सामने वाला भी वैसा ही व्यवहार करे। उसने गहरी साँस ली। उसे एहसास हुआ कि अच्छे कर्म किसी सौदे का हिस्सा नहीं होते कि बदले में अच्छाई ही मिले। हम किसी के साथ अच्छा इसलिए करें क्योंकि अच्छा होना हमारे संस्कार हैं, किसी दूसरे का व्यवहार नहीं। शीशे में खुद को देखते हुए शिवानी के चेहरे पर हल्की-सी मुस्कान आई। उसके मन का मंथन जैसे उसे उतर दे चुका था। लोग मेरे साथ कैसा व्यवहार करते हैं, यह उनके संस्कार हैं, मैं उनके साथ कैसा व्यवहार करती हूँ, यही मेरे संस्कार हैं। और शायद यही सोचकर शिवानी ने अपने मन का बोझ उतार दिया। वह उठी और पहले की तरह अपने रास्ते पर चल पड़ी बिना किसी के लिए बुरा सोचे, बिना किसी अपेक्षा के अपना अच्छा कर्म करते हुए।

सूरेखा सरोदे
इंदौर

वृक्षारोपण

सरकार का वृक्षारोपण कार्यक्रम जोर शोर से चल रहा था। 21 लाख पौधे लगाने का लक्ष्य था। हर विभाग और नेता को 250 पौधे लगाने का टारगेट दिया गया था। वाहवाही पाने के लिए सभी प्रयासरत थे क्योंकि चुनाव नजदीक थे और टिकट पाने का यही सर्वश्रेष्ठ तरीका था। नेताजी जिस बगीचे मे पौधे लगाने पहुंचे, वहाँ पहले से ही पर्याप्त वृक्ष और पौधे लगे हुए थे फिर भी लक्ष्य तो पूरा करना ही था तो 250 पौधे और लगा दिये, जिनके बीच की दूरी एक? फीट से भी कम थी। वहाँ के रहवासियों ने विरोध किया कि ये पौधे आपस में टकराएगें और इन सबका विकास रूक जाएगा। पानी की भी कमी है, ये मर जाएगें। आपने बगीचे के बीच में भी पौधे लगा दिए है तो बच्चे कहाँ खेलेंगे? पर सुनता कौन? ऊपर का आदेश, शासन का निर्देश और नेताजी की इमेज का सवाल था।

कुसुम जैन शाजापुर
242 आलोक नगर इन्दौर।

मिनी का सपना

मिनी को आज नींद नहीं आ रही थी। आदत थी उसे रोज माँ से कहानी सुनने की। वे कभी राजा - रानी की कभी परियों, कभी अच्छे- बुरे लोगों की कहानी सुनाती। माँ तीन दिन से बीमार हैं। कुछ सोच कर वह दादी के पास चल दी। बोली - ' दादी- कहानी सुनाओ वही सोनपरी वाली सबकी दोस्त परी वाली --? दादी बोलीं - ' सो जा मिनी। माँ बीमार है न। शोर तो मत करो। पर मिनी कहाँ मानने वाली थी? दुनकते हुए बोली -- कैसे सोऊँ? सुनाओ न. अच्छा वही सोनपरी वाली, जो जादू करती है। ? क्या करती दादी?. नन्ही मिनी को उदास देख उसे आपने पास लिटा लिया। दस बार की सुनाई हुई कहानी-' एक थी, सोनपरी। बहुत सुन्दर, नन्ही सी, कोमल,सुनहले पंखो वाली। जादू की छड़ी हाथ में लिये ,फूल पर बैठ कर गाना गाती और कभी तितली बन नाचती। जुगनू और चमकते पत्थरों के बीच घूमती। आस - पास के बच्चे भी उसे घेर कर नाचने लगे।... ता धिन, ता धीन -ता धीना -- इतने में ही मिनी की आँखें बंद हो गयीं और वह सपने में खोने लगी। उसे लगा सोनपरी उसे बुला रही है। वह दौड़ कर सोनपरी के पास गयी और उसकी जादू की छड़ी मांगने लगी। मिनी -- सोनपरी! ये जादू की छड़ी दो न? सोनपरी -- क़्या करोगी? तुम्हारे काम की नहीं। मैं ही इससे जादू कर सकती हूँ। तुम तो इंसान हो न ? मिनी ने कहा ' तो मेरी माँ को ठीक कर दो अपने जादू से। करोगी न? सोनपरी सोच में पड़ गयी बोली ' अरे, जादू नहीं चलेगा उन पर। डॉक्टर से दवा दिलाओ, वह भी जादू है एक तरह का। मिनी - हाँ,परी! दवा से ठीक नहीं हुईं न ? अब तुम्हें ठीक करना होगा। वरना मैं रूठ जाउँगी। परी -- अच्छा ज़रा रानी परी को बुला लूँ। वही कुछ करेंगी। सोनपरी ने सीटी बजाई । रानी परी चाँद के झूले पर सवार नीचे आयी। मिनी दौनों को माँ के पास गयी। उसने आँख बंद कर तीन बार छड़ी उनपर फिराई। फिर ज़ोर से बोली-- 'माँ का बुखार उतर जाये मिनी बेबी- खुश हो जाये।' छू मंतर-- छू मंतर'.... और यह क्या ? 'सोनपरी - रानी परी .....'के नाम बड़बड़ाते मिनी ने करवट ली । दादी की आवाज़ सुनी-- ज़ोर से कानों में पड़ी। 'उठ मिनी स्कूल नहीं जाना? देखो सुबह हो गयी। जल्दी करो।' मिनी अलसाई सी उठी और देखा माँ-- किचिन में खटपट कर रहीं। उनके एक हाथ में कैम्फूल और दूसरे में दूध था। ओह ! तो परी का जादू चल गया ? दौड़ कर मिनी ने माँ को पीछे से पकड़ लिया। माँ ने दवा खा कर मिनी को गोद में उठा लिया। मिनी ने पूछा 'आप ठीक हो गए? माँ बोली -- ' हाँ--. तुम्हें देख कर ... जादू से .।. और हँस दीं दादी की ओर देख कर। मिनी की आँखों में कभी दवाइयाँ कभी सोनपरी और रानी परी उतर आयीं।

महिमा शुक्ला
इंदौर, (म.प्र.)
9589024135

पहले बनाओ आदत और फिर पहना दो टोपी

कभी सरकार ,कभी दरबार और कभी इश्तहार मिलकर कुछ न कुछ नया करते रहते हैं।सियासत के सर्कस में कुछ जोकर घूमते रहते हैं, कभी मनोरंजन करते हैं ,कभी रंजन करते रहते हैं,कभी लगता है कि ये दुख भंजन हैं और कई बार यही चौंका देते हैं , कुछ चौके छक्के लगा देते हैं और बाउंड्री पार करवा देते हैं और दिल भंजन साबित होते हैं।जनता इनकी कार गुजारी पर ताली नहीं पीटती बल्कि अपना सिर पीट लेती है। जैसे टेलीकॉम की कंपनी ने पहले फ्री सिम बांटी ,सस्ता नेटवर्क दिया, और फिर जब आदत डाल दी, लोगों में दिन भर मोबाइल से चिपके रहने की लत लगा दी, तब अचानक से टैरिफ बढ़ा दिए।सारी कंपनियों ने मिलकर एक समूह बनाकर एक मूल क़ीमत तय कर दी , ट्राई नियामक संस्था भी देखती रह गई, इन कंपनियों में उसे भी लागत बता दी और उस पर मुनाफा मिनिमम दिखाकर अपनी तय दरों को मनवा लिया।जनता चिल्लाती रही, अखबार दर अखबार छापते रहे, मगर जनता की आवाज़ ट्राई में सेट नहीं हो सकी, कोई सामूहिक प्रयास जनता ने नहीं किए, कई मीडिया हाउस ने विज्ञापन के चक्कर में यह बताना चालू कर दिया कि भारत में दरें सबसे सस्ती हैं। वे यह कभी नहीं बता पाए कि भारत में सेवाओं का स्तर क्या है,कॉल ड्रॉपिंग क्यों, और बहुत सारी जगह नेटवर्क की दिक्कतें।बहराहाल ऐसा ही कुछ सरकार ने यू पी आई पेमेंट सिस्टम के साथ जनता के साथ एक छलावा कर दिया है।उन्होंने पहले दो चार साल खूब प्रचलित कर दिया कि इस विधि से भुगतान कीजिए, बिना किसी झंझट के, युवाओं में तत्काल इसे अपनाया कि चलो एक नंबर की व्यवस्था हो रही है, दुकानदार बिक्री छुपा नहीं सकते, हालत यह हो गई कि सब्जी के ठेले पर दस रुपए की हरी मिर्च, धनिया भी इसी विधि से भुगतान किया जाने लगा, जनरल स्टोर पर पांच दस रुपए की वस्तु का दाम भी इसी विधि से भुगतान होने लगा।सरकार की सी जी एस टी से कमाई भी बढ़ी।खूब पोस्टर बैनर लगा लगाकर विरोधतएँ प्रचारित की गई,खूब विज्ञापन दिए गए और अब अचानक से इस मानक विधि पर चार्ज लगा दिया , बड़े ज़ोर शोर से बताया जा रहा है कि जनता को इसका भुगतान नहीं करना है, आप जिस दुकान से सामान लेंगे वह इसका भुगतान करेगा।खूब हो हल्ला है,सरकार अपनी बात सरकारी ढंग से रख रही है, ज्ञानी जन अपना खूब ज्ञान बघार रहे हैं, यूट्यूबीए अपनी रील बनाने में व्यस्त हैं, बहरहाल जनता पस्त है,उसे फिर अपनी जेब कटने की को कोई भुगतान नहीं करना है जो भी पैसा लगना है ,जो चार्ज देना है वह दुकानदार को देना है।अब वित्त प्रबंध के सरकारी महारथी, वित्त विभाग के बड़े अधिकारी और मंत्री तक यह नहीं समझते क्या कि दुकानदार अपनी जेब से इसका पैसा भरेगा क्या? वह तो अपनी लागत में यह खर्चा जोड़ेगा और भले ही उसे कम दर से भुगतान करना पड़े ,वह अधिकतम दर से लागत में जोड़कर उस पर वकील, क्लर्क का खर्चा जोड़कर ही फिर लागत बिठाएगा।मतलब सीधा सा है कि यदि इससे खर्चा आधा प्रतिशत बढ़ेगा तो दुकानदार डेढ़ प्रतिशत ही बढ़ाकर अपनी लागत दिखाएगा और जनता से वसूली करेगा। सरकार ने कमर्शियल गैस सिलेंडर में थोड़ा पैसा क्या बढ़ाया सब होटल वालों ने,रेस्टोरेंट वालों ने एक कचौरी, समोसे में पांच से सात रुपए और चाय में तीन रुपए तक बढ़ा दिए, चाय पीते वक्त चाय में गैस सिलेंडर ही तैरता नजर आता है, दुकानदारों ने कभी सिलेंडर की कीमत कम होने पर जनता को कोई राहत नहीं दी। अभी बाजारों में अचानक से शकर भावों में तेजी क्या दिखाई दी सारे मिठाई वालों ने मिठाई की दरों में बीस प्रतिशत तक इजाफा कर दिया जबकि पहले ही पांच छह सौ रुपए किलो बिकने वाली मिठाई में साठ प्रतिशत तक शकर होती है और शेष मावा मतलब यह कि जनता पहले ही शकर मावे के भाव खा रही थी, इस कदर जनता को बेवकूफ बनाया जाता है और जनता की मजबूरी है उसे त्यौहार मनाना है मोदक खरीदना है और भोग लगाना है।

ऐसे ही यू पी आई की मिठाई खाइए त्यौहार पर सरकारी तोहफा पाइए,खूब गाड़ियां बिक रही है,खूब टैक्स सरकार को मिल रहा है,सड़कें ,रेल परियोजनाओं, नए अस्पताल, नए पुल, नए स्कूल, नए पंचायत भवन, सामुदायिक विकास सब तेजी से चल रहा है ,सबको लाडली लक्ष्मी से लाडले भैया तक फ्री पैसा बांटना है, अनुत्पादक व्यय करना है तो जनता से किसी न किसी बहाने कोई न कोई टैक्स तो वसूलना ही है ,चाहे उसका नाम कुछ भी हो और फिर उसकी आड़ में यह भी नहीं देखा जा रहा है कि यह प्रतिगामी नई व्यवस्था क्यों लगाई जा रही है ,दुकानदार इससे बचने के लिए फिर से नकदी व्यवहार शुरू कर देगा ,उसके यहां दो दरें होंगी ,एक यू पी आई से भुगतान की और एक नकद भुगतान की, तब सरकारी तंत्र और उसके नियम की फिर सरेआम धज्जियां उड़ेगी,उसका कोई काउंटर है क्या?इसीलिए सरकारी नीतियां असरकारी नहीं होती।फिलहाल जनता इसकी पेचीदगियों में उलझी हुई है और सरकार सुलझी हुई है।हर माह एक नया शगूफा और जनता को नया गिफ्ट प्रसाद मिलता रहेगा।नीतियां जितनी उलझी होंगी तंत्र में उतना भ्रष्टाचार उर्फ शिष्टाचार बढ़ता रहेगा।जनता के सिर खुले हैं उन्हें धूप ,धूल से बचाने के लिए ऐसी टोपियां पहनाई जाती रहेंगी।

अरुण कुमार जैन
व्यंग्यकार

डिजिटल इंडिया का डिजिटल टोल नाका

या यूं कहिए कि आन लाइन पेमेंट कटौती में सरकार की डकैती। याद है 2016-17 वाला वो दौर? मोहल्ले के पान ठेले पर भी एक लड़का आकर स्टिकर चिपका जाता था - 'PhonePe / Paytm / BHIM से पेमेंट करें' । चाय की टपरी, आंटी वाला, सब्जी वाला, सबकी दुकान पर क्यू आर कोड ऐसे चमक रहा था जैसे भारत रत्न मिल गया हो। नारा था - कैशलेस बनो, देश बदलेगा। फ्री है, जीरो M D R है, कोई चार्ज नहीं। और हम बन भी गए। जेब में 10 रुपये का सिक्का रखना भी हमने पिछड़ापन समझ लिया। अब कहानी का इंटरवल खत्म हुआ है, और सेकंड हाफ शुरू हो रहा है। सरकार और उसके थिंक-टैंक अब नया ज्ञान दे रहे हैं - UPI फ्री कैसे हो सकता है? सर्वर का खर्चा है, मेंटेनेंस है, NPCI को भी तो कमाना है। अरे? NPCI? वो संस्था जो खुद सालाना 1000 करोड़ से ज्यादा के मुनाफे में बैठी है, उसको भी अब हमारे ?5000 के लेन-देन में से ?20 चाहिए? तर्क सुनिए - 'ये चार्ज ग्राहक नहीं देगा, दुकानदार देगा।' इससे बड़ा मजाक पिछले 10 साल में नहीं सुना। इस देश में आज तक कौन सा दुकानदार है जिसने टैक्स अपनी जेब से दिया हो? सरकार तेल कंपनी से एक्साइज वसूलती है, पर ?50 का तेल हम ?106 में खरीदते हैं। सरकार फैक्ट्री से तख़्त लेती है, पर साबुन-तेल का दाम हम बढ़ा हुआ चुकाते हैं। तो जब राजू किराना वाले के खाते से ?10,000 पर ?40 कटेगा, तो वो क्या करेगा? वो अगले दिन दाल के भाव में ?2 किलो जोड़ देगा। भरपाई तो आप ही करोगे। मतलब सीधा है - आपसे ही कैश खत्म करवाया, आपको ही कैशलेस की लत लगवाई, और अब उसी लत पर टोल टैक्स लगा दिया। ये बिल्कुल वैसा ही है जैसे पहले आपको फ्री में पार्क में टहलने की आदत डलवाई जाए, फिर कहा जाए कि अब हर चक्कर पर ?10 लगेगा, क्योंकि घास का मेंटेनेंस है। पहले कहा - बैंक मत जाओ, लाइन में मत लगो। अब कह रहे हैं - हर फिलक पर पैसा दो। सच तो ये है कि मुफ्त की चीज़ इस व्यवस्था में सिर्फ वादा होता है। सुविधा को पहले जरूरत बनाया जाता है, फिर जरूरत को मजबूरी, और फिर मजबूरी पर टैक्स लगाया जाता है। तो अगली बार जब आप चक्रकोड स्कैन करो, तो सिर्फ पेमेंट मत करना, एक बार ये भी सोचना - आप सब्जी खरीद रहे हो या डिजिटल इंडिया का टोल टैक्स भर रहे हो?

आशीष तिवारी निर्मल
लालगांव रीवा।
8602929616

कहानी

डिज़िटल युग का काला पक्ष

एक पखवाड़े में आठवीं बार बीमार मालिनी मुँह लपेटे पड़ी थी। मुकुल रसोई में चाय और मैगी बना रहा था। जो साल भर से बच्चों के लिए भोजन का विकल्प बनी हुई थी। भूखे बच्चे रसोई की ओर ताक रहे थे। आनन-फानन में बनी मैगी बच्चों को दे कर मुकुल ने जल्दी-जल्दी चाय गटकी और ऑफिस के लिए तैयार होने लगा। सुबह की चाय बनाने और बीमार बीवी को दूध-ब्रेड देने के बाद साफ-सफाई, स्नान-ध्यान के चक्कर में उसे पहले ही काफ़ी देर हो चुकी थी। काम निपटाने के बाद मुकुल स्कूल के लिए तैयार

हुए बच्चों को लेकर कूच कर गया। पल-पल मद्धिम होती बाइक की आवाज़ मालिनी की बीमारी को उससे दूर कर रही थी। उसने उठ कर एक अंगड़ाई लेते हुए मोबाइल उठाया और अपनी बहिन से वर्चुअल वार्ता में जुट गई। उसका सिर और बदन दर्द काफ़ूर हो चुका था। मालिनी अपनी बहिन से आरामखोरी और बेशर्मी की ऑनलाइन ट्रेनिंग लेने में व्यस्त थी। जिसके बलबूते उसका अपना जीवन परिवार के माहौल से उलट सुखमयी बना हुआ था। इधर मालिनी अपनी बहन की ट्रेनिंग के सुखद परिणामों से गदगद थी, उधर टेलीविज़न पर देश से लगभग लुप्त हो चुकी 'नौटंकी कला' के संरक्षण को लेकर बहस चल रही थी।

प्रणय प्रभात
श्योपुर (मप्र)

सामान्य श्रेणी का असामान्य सफर

ट्रेन का सफर अपने आप में बड़ा रोचक होता है, लेकिन अगर सफर सामान्य श्रेणी के डिब्बे में हो तो समझिए रेलवे ने आपको टिकट के साथ मनोरंजन का पैकेज भी दे दिया है। वातानुकूलित डिब्बे में आदमी सफर करता है, आरक्षित डिब्बे में यात्री सफर करता है और सामान्य डिब्बे में आदमी यह साबित करता है कि वह सफर कर सकता है! सामान्य डिब्बे में चढ़ना ही अपने आप में एक उपलब्धि है। स्टेशन आते ही प्लेटफॉर्म पर यात्रियों की भीड़ देखकर लगता है कि ट्रेन नहीं, कोई मुफ्त योजना बंटने वाली है। ट्रेन रुकती नहीं कि यात्रियों में लोकतांत्रिक अधिकारों की जंग शुरू- 'पहले उतरने दो!' और दूसरी तरफ से आवाज आती है- 'पहले चढ़ने दो!' उतरने वाला मानता है कि टिकट उसने उतरने के लिए भी लिया है और चढ़ने वाला मानता है कि टिकट उसने चढ़ने के लिए लिया है। दोनों अपने-अपने अधिकार के प्रति इतने जागरूक होते हैं कि कुछ क्षणों के लिए संविधान भी असहाय दिखाई देता है। जैसे-तैसे ट्रेन में प्रवेश मिल जाए तो अगला लक्ष्य होता है-सीट! सामान्य डिब्बे में सीट मिलना किसी सरकारी नौकरी में चयन से कम उपलब्धि नहीं। खाली सीट दिखाई दी नहीं कि यात्री की आंखों में चमक आ जाती है। मगर उससे पहले खिड़की से एक बैग, रुमाल, गमछा या पानी की बोतल सीट पर विराजमान मिलती है।स्मान सीट पर नहीं रखा गया है, सामान के माध्यम से अधिकार स्थापित किया गया है।बै ठा कहता है- 'यात्री अभी बाहर है, लेकिन सीट हमारी है।' और यदि कोई दूसरा यात्री उस सामान को हटाने की कोशिश कर दे तो बैग का मालिक ऐसे प्रकट होता है, जैसे जमीन पर अतिक्रमण की शिकायत मिलते ही कोई अधिकारी मौके पर पहुंच गया हो। कुछ यात्री सीट के लिए नहीं लड़ते। वे सामान रखने वाली बर्थ पर बैठने की जुगत भिड़ाते हैं। उनका तर्क बड़ा सीधा है- 'बैग नीचे रख देंगे, आदमी ऊपर बैठ जाएगा। आखिर जगह आदमी के लिए बनी है या सामान के लिए? ' ऊपर जो यात्री पहले से सीट पर बैठे हैं, वे भी कम प्रतिभाशाली नहीं होते। जैसे ही आसपास की कोई सीट खाली होती है, वे तत्काल फैलने लगते हैं। पहले एक सीट, फिर आधी दूसरी सीट और अवसर मिला तो तीसरी पर भी पैर।उ नका दर्शन स्पष्ट है- 'हमने चढ़ने में संघर्ष किया है, अब पसरने का सुख हमारा अधिकार है। 'क ुछ देर पहले तक जो यात्री एक-दूसरे से सटकर बैठे थे, सीट खाली होते ही ऐसे फैल जाते हैं जैसे बरसात में नाला।अ ैर बेचारा गलियारा! गलियारा सामान्य श्रेणी के डिब्बे में रास्ता कम और मानव पार्किंग स्थल ज्यादा होता है। वहां बैठे यात्रियों से ज्यादा खड़े यात्री दिखाई देते हैं। तीन लोग हिल जाते हैं। इसी बीच किसी को लघुशंका याद आ जाती है। फिर गलियारे में आवाज आती है- 'भैया, जरा साइड देना।' खड़ा यात्री अपने शरीर को इतना ही मोड़ सकता है जितना मोबाइल में अंदर खींचता है। जाने वाला निकल जाता है। फिर कुछ देर बाद वही आवाज- 'भैया, वापस आने देना। ' अब पूरा गलियारा फिर से अपनी पुरानी स्थिति में लौटता है।

और अगर किसी को दीर्घशंका हो गई तो समझिए गलियारे में पूर्ण लंबाई का ट्रैफिक जाम लग गया। अभी यह समस्या समाप्त भी नहीं होती कि अचानक आवाज आती है- 'ठंडा पानी... ठंडा पानी... ' इसके साथ ही एक बोतल वाला ऐसे रास्ता बनाता है जैसे उसे रेलवे ने विशेष कॉरिडोर उपलब्ध कराया हो।उ सके पीछे- 'पॉपकॉर्न... पॉपकॉर्न... ' फिर- 'चना मसाला... ' फिर- 'समोसा... कचौरी... ' और अंत में मूंगफली वाला। गलियारे में खड़े यात्री सोचते हैं कि हम यहां यात्री हैं या चलती-फिरती दुकान के प्रदर्शन-स्टैंड? विक्रेता को अपना सामान बेचने की चिंता है, यात्री को अपना शरीर बचाने की।

विक्रेता कहता है- 'जरा साइड! ' यात्री मन ही मन कहता है- 'भाई, अगर और साइड हुआ तो मैं डिब्बे से बाहर चला जाऊंगा। ' इस सबके बीच ट्रेन अपनी गति से चलती रहती है। कोई सीट खोज रहा है, कोई सीट बचा रहा है, कोई सीट छोड़ रहा है, कोई सीट पर कब्जा कर रहा है और कोई सीट के नीचे अपनी जगह तलाश रहा है। किसी का स्टेशन आने वाला है तो वह दरवाजे की ओर बढ़ने लगता है। लेकिन दरवाजे तक पहुंचना भी किसी अभियान से कम नहीं। बीच में दस लोग खड़े हैं। वह कहता है- 'भैया, मेरा स्टेशन आ गया। ' सामने से उत्तर- 'मेरा भी आएगा, पहले आप थोड़ा रुको। ' आखिरकार ट्रेन स्टेशन पर पहुंचती है। उतरने वालों में फिर वही जोश, वही संघर्ष और वही अधिकारबोध। चढ़ने वाले तैयार खड़े हैं। उतरने वाला कहता है- 'पहले उतरने दो! ' चढ़ने वाला कहता है- 'पहले चढ़ने दो! ' और ट्रेन की सीटी बज जाती है। जो उतर गया, वह विजेता। जो चढ़ गया, वह भी विजेता। और जो न उतर पाया, न चढ़ पाया- वह अगले स्टेशन तक सामान्य श्रेणी का स्थायी यात्री बन जाता है। शायद इसी का नाम सामान्य श्रेणी है-जहां यात्रा सिर्फ एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने का माध्यम नहीं, बल्कि सीट, सांस, जगह और अधिकार के लिए रोज होने वाला छोटा-सा महाभारत है। यहां टिकट सामान्य है, डिब्बा सामान्य है, किराया सामान्य है... बस संघर्ष और अनुभव- असामान्य हैं!

-ओमप्रकाश चोरमा
उज्जैन
(मध्यप्रदेश)